P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-5* January- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय संस्कृतिः एक विलक्षण सदा जीवा, अतुल्य एवं अक्षुण्ण संस्कृति

धीरज सिंह
विभागाध्यक्ष,
शिक्षा शास्त्र विभाग,
मॉडर्न कालेज ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, मोहननगर,
गाजियाबाद, भारत

सारांश

संस्कृति की अवधारणा अति व्यापक एवं विस्तृत है। संस्कृति मानव व मानव समाज की एक अमूल्य निधि हैं। मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसे संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति मानव की वैचारिक व सृजनात्मक प्रतिभा का प्रतिफल है। वर्तमान संस्कृति मानव सभ्यता के प्रारम्भ से लेकर आज तक की अवधि अर्थात हजारों–लाखों वर्षों के सामूहिक प्रयत्नों का प्रतिफल हैं। पूर्वजा से प्राप्त ये सारी विविधतायें, विशिष्टतायें ही सांस्कृतिक विरासत के रूप में जानी जाती हैं। किसी समाज या राष्ट्र की संस्कृति उस समाज या राष्ट्र के सदस्यों की प्रतिभा का परिचायक होती है।

भारत एक बहुधर्मी, बहुभाषी, बहुरंगी व प्राकृतिक विविधताआ से भरा देश है जिसकी संस्कृति बहुआयामी है। भारतीय संस्कृति का मूल वेदों से निहित है। वैदिक वांगमय ही भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत, निर्धारक, निर्देशक व आधार है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम व समृद्धतम् संस्कृतियों में से एक है। भारत को विश्व का धर्म गुरू कहा जाता है। उसकी कुछ ऐसी विशेषतायें है जिनके कारण वह सम्पूर्ण विश्व में अपना विशिष्ट स्थान रखती है और अन्य संस्कृतियों से अपने को अलग करती है। उसकी विशेषतायें है: प्राचीनतम, निरंतर प्रवाहमान, व सदा जीवा, सर्व कल्याणकारी, आत्मोत्सर्गवादी, व्यापक व लचीली, सहिष्णु, व समन्वयकारी, निष्काम कर्मवादी, मूल्यवादी, प्रकृति वादी, आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का समन्वय करने वाली, संस्कार प्रधान, एकात्मवादी, धर्म आधारित, वैविध्यपूर्ण एवं अनेकता में एकता आदि। भारतीय संस्कृति की उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर ही विश्व में उसे अतुल्य, अक्षुण्ण व विशिष्ट माना गया है और सदा जीवा संस्कृति के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

मुख्य शब्द : संस्कृति, निरंतर प्रवाहमान , प्राचीनतम्, अतुल्य, आध्यात्मिकता, धर्म।

प्रस्तावना

ईश्वर की समस्त सृष्टि में मानव का स्थान सर्वोपरि है। विधाता ने उसे जहां एक ओर विलक्षण बुद्धि प्रदान की है वहीं दूसरी ओर उसके हृदय में रागाात्मक वृत्तियों का सन्निवेश किया है। मनुष्य को केवल भौतिक समृद्धि में ही संतोष नहीं होता अपितु वह अपने जीवन को और अधिक सुन्दर तथा आनन्द मय बनाने का प्रयत्न करता है। संगीत, कला, साहित्य आदि के प्रादुर्भाव का यही स्रोत है। व्यक्ति का जीवन विभिन्न कलाओं द्वारा सुसंस्कृत बनता है। मनुष्य ने सर्वप्रथम अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की तदन्तर बुद्धि और ज्ञान के प्रयोग द्वारा कर्म क्षेत्र में सृजन कार्य किया। इसलिए हम कह सकते हैं कि मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसे संस्कृति कहा जाता है। सभ्यता के क्रमिक विकास के साथ–2 मानसिक उन्नति, नैतिक विकास और आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना समाज में होती है और वे संस्कृति के अंतर्गत आते हैं।

मानव का जो सर्वश्रेष्ठ स्थान सभी प्राणियों में मिला हुआ है उसका कारण है उसकी विलक्षण बुद्धि, विवेकपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता एवं उसका सुसंस्कृत होना। इसी आधार पर वह ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति माना जाता है। मानव में वैचारिक चिन्तन की क्षमता है तो साथ ही साथ उस वैचारिक चिन्तन को वास्तविक धरातल पर उतारने की सृजनात्मक क्षमता भी है। संस्कृति मानव की इसी वैचारिक व सृजनात्मक प्रतिभा का प्रतिफल है। किसी समाज या राष्ट्र की संस्कृति उस समाज या राष्ट्र के सदस्यों की प्रतिभा का परिचायक होती है।

प्रस्तुत शोध आलेख में भारतीय संस्कृति का परिचय प्राप्त करते हुए भारतीय संस्कृति की उन विशेषताओं का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है जो उसे विशिष्ट, विलक्षण, सदाजीवा, अतुल्य व अक्षुण्ण बनाती है।

शोध आलेख का शीर्षक

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक है– *''भारतीय संस्कृति : एक विलक्षण, सदा जीवा, अतुल्य एवं अक्षुण्ण संस्कृति।''*

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य भारतीय संस्कृति से परिचित कराते हुए भारतीय संस्कृति की विशिष्टताओं एवं विलक्षणताओं का अध्ययन करना है।

शोध विधि–भाोध पद्वति

प्रस्तुत शोध पत्र आलेखन में ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग किया गया है।

भारतीय संस्कृति : एक परिचय

भारत एक बहुधर्मी, बहुभाषी, बहुरंगी व प्राकृतिक विविधताओं से भरा देश है जिसके उत्तर में विशाल हिमालय पर्वत एवं दक्षिण में अथाह सागर है। भारत की गणना विश्व के उन महान प्राचीनतम राष्ट्रों में होती है जिनका अपना स्पष्ट इतिहास, विकसित संस्कृति एवं सुपरिभाषित प्रबुद्ध धर्म व दर्शन है। भारत में समय–2 पर उत्तम परम्परायें विकसित व स्थापित हुई जिसने भारत ही नहीं वरन समस्त विश्व का मार्गदर्शन किया। भारत की संस्कृति बहुआयामी है जो सिंधु घाटी की सभ्यता के दौरान बनी और आगे चल कर वैदिक युग में विकसित हुई बौद्ध व जैन धर्मो की स्थापना के साथ ही भारतीय संस्कृति पुष्पित व पल्लवित होते हुए आगे बढ़ी। 1192 ई. में तराइन के द्वितीय युद्ध के पश्चात भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना होने के साथ भारतीय संस्कृति ने नई करवट ली और कुछ नइ परम्पराओं का सूत्रपात हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुए भक्ति आन्दोलन ने भारतीय धर्म, संस्कृति व दर्शन को नया आयाम प्रदान करते हुए यहां की प्राचीन विरासत को और समृद्ध किया। पुनर्जागरण काल में अनेक मनीषियों यथा राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती आदि ने यहां की सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध करते हुए आगे बढ़ाया। संस्कृति की ये धारा कभी रूकी नहीं।

भारतीय संस्कृति का मूल वेदों से निहित है। भाषा की उच्चता एवं परिशुद्धता से समृद्ध, विचारों से प्रबुद्ध व परिवक्व, मानवीय मूल्यों का संरक्षक व संवर्द्धक, सामाजिक संरचना व जीवन पद्धति का समुचित व विधिवत मार्गदर्शन कराने वाला वैदिक वांगमय ही भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत, निर्धारक, निर्देशक व आधार है।

भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषतायें

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम व समृद्धतम् संस्कृतियों में से एक है। उसकी कुछ ऐसी विशेषतायें है जिनके कारण वह सम्पूर्ण विश्व में अपना विशिष्ट स्थान रखती है और अन्य संस्कृतियों से अपने को अलग करती है। भारतीय संस्कृति की उन विशेषताओं को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है जो उसे विशिष्ट, बिलक्षण, अतुल्य व अक्षुण्ण बनाती है।

पाचीनतम् संस्कृति

भारतीय संस्कृति की गणना विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों के मध्य होती है जिसका मूल तत्व उसमें निहित स्थायित्व की भावना है। मिश्र, यूनान, असीरिया, क्रीट, रोम, काबुल आदि की सभ्यतायें एक समय उच्चता के शिखर पर थी परन्तु समय परिवर्तन के साथ समाप्त हो गयी। भारतीय संस्कृति आज तक अक्षुण्ण रूप में हमारे बीच वर्तमान है। *''पृथ्वी पर मानव सभ्यता का विकास कब, कहां और कैसे प्रारम्भ हुआ इस विषय में साहित्यकार, इतिहासकार, मानव शास्त्री, समाजशास्त्री, खगोलशास्त्री और जीव वैज्ञानिकों के अपने–2 मत है और इन मतों में बड़ी भिन्नता है। परन्तु अब एक बात स्पष्ट होती जा रही है कि जब संसार की अन्य जातियां पशुवत जीवन जी रही थी, हमारे देश भारत में उच्च सभ्यता एवं संस्कृति का विकास हो चुका था, संसार के सर्वप्रथम ग्रंथ वेदों की रचना हो चुकी थी। वेद उस समय के ज्ञान के कोश हैं।''* [1] धर्म एवं संस्कृति को प्राचीनतम व उच्चतम केन्द्र के रूप में भारत का स्थान था। इसीलिए इस प्रतिष्ठापूर्ण स्थान के कारण भारत को विश्व का धर्म गुरू कहा जाता है। प्राचीन वैदिक काल से लेकर बौद्ध काल तक भारत में अनेक नगर शिक्षा, धर्म व संस्कृति के केन्द्र के रूप में विकसित थे एवं अनेक विश्व विद्यालय जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर के थे, विकसित हो चुके थे। सम्पूर्ण विश्व के लिए भारत आदरणीय व अनुकरणीय था।

निरंतर प्रवाहमान व सदा जीवा संस्कृति

भारतीय संस्कृति विश्व की एक मात्र ऐसी संस्कृति है जो अभी तक जीवित है। इसी कारण इसे सदा जीवा संस्कृति भी कहा जाता है। इसके सदा जीवा होने का कारण इसका सतत प्रवाह मान होना है। *''विश्व के चार देश सबसे पुराने संस्कृत देश माने जाते है–भारत, मिश्र, चीन और यूनान। परन्तु भारत को छोड़कर अन्य तीनों देशों की प्राचीन संस्कृति के आज उन देशों के जीवन में दर्शन नही होते। मिश्र, चीन और यूनान की प्राचीन संस्कृति या तो वहां के खण्डहरों में दिखती है या वहां के अजायबघरों में। भारत ही संसार में एक मात्र प्राचीनतम देश है जहां की प्राचीनतम् संस्कृति की परम्परा आज भी आज के भारतीय जीवन में दृष्टिगोचर होती है।*[2] भारतीय संस्कृति की निरंतरता ही उसे सदा जीवा बनाये रखते हुए स्थायित्व प्रदान करती है। पं. विद्वानिवास मिश्र के शब्दों में – *''भारतीय संस्कृति निरंतरता की साधना है। इसलिए उसमें कहीं भी ठहराव नहीं है।''* [3] भारतीय संस्कृति सिंधु घाटी की सभ्यता में पनपी, वैदिक काल में विकसित हुई, बौद्ध व जैन काल में पुष्ट हुई, मध्य काल में दृढतर होती हुई ब्रिटिश काल में पहुंची। यह यात्रा उसकी जारी रही।

लचीली, सहिष्णु व समन्वयकारी संस्कृति

भारतीय संस्कृति अति उदार है सहिष्णु है और लचीली है। भारतीय संस्कृति किसी का तिरस्कार नहीं करतो, किसी को त्याज्य नहीं मानती। उसमें स्वीकार्यता का गुण है। वह सब को साथ लेकर चलती है। सबको आत्मसात करने की क्षमता है उसमें। उसकी निरंतरता व सदा जीवा होने का यही कारण हैं। ईशा पूर्व से भारत में विदेशियों को आना जाना प्रारम्भ हुआ। भारतीय संस्कृति

ने किसी का तिरस्कार नहीं किया। शक, कुषाण, हूण, तुर्क, मंगोलियन, यूनानी, अरबी, मुगल आदि सभी भारत में आये। कुछ आकर लूट कर वापस चले गये, कुछ यहीं की संस्कृति में रच बस गये। 'भारतीय संस्कृति मे सभी संस्कृतियाँ मिलकर भी भारतीय संस्कृति के स्वरुप को बदल नही सकी। विदेशी विचारधाराओं का सदैव यहां पर स्वागत किया गया। समन्वय की वृत्ति भारतीय संस्कृति का प्राण और जीवन है।" भारतीय संस्कृति अनेक संस्कृतियों के सम्पर्क में आकर भी यथावत बनी रही। भारत की महान संस्कृति के विषय में डाडवेल महोदय का कथन उल्लेखनीय ह। उनके शब्दों में –'भारतीय संस्कृति समुद्र की तरह है जिसमें बहुत सी नदियां आ आकर समाती गई हैं।' अपने इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण भारतीय संस्कृति सतत प्रवाहमान है एवं प्रतिष्ठापूर्ण पद पर विराजमान है।

सर्व कल्याणकारी, आत्मोत्सर्गवादी व व्यापक संस्कृति

भारतोय संस्कृति अति व्यापक व उदार दृष्टिकोण वाली है। यह भौगोलिक सीमाओं से परे है। यह 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' का उद्‌घोष करते हुए अपने मूल भाव को निम्न रूप में स्पष्ट करती है–

''सर्वे भवतुं सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दखभागभवेत्।।"
(बृहदारण्यक उपनिषद से)

भारतीय संस्कृति की परिधि तो इतनी विशाल है कि इसमें समस्त ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। इसकी व्यापकता ऐसी है जिसमें अपने पराये का भेद नहीं है एवं सम्पूर्ण विश्व एक कुटुम्ब के समान प्रतीत होता है। –

''अयम् निजः परोवेति, गणना लघुचेतसाम।
उदार चरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।" [4]

भारतीय संस्कृति में स्वार्थ परता को कोई स्थान नहीं दिया गया है। जन व जग कल्याणार्थ आत्मोत्सर्ग की प्राचीन परम्परा यहां विद्यमान रही है। दधीचि, शिवि राजा हरिश्चन्द्र आदि ऐसे नाम है जिन्होंने लोक कल्याण हेतु अपना सर्वस्व निछावर कर दिया।

सम्पूर्ण पृथ्वी को माता का सम्बोधन देने वाली विश्व में केवल भारतीय संस्कृति ही है। इसकी स्पष्ट उद्‌घोषणा है कि –

"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।" [5]

भारतीय संस्कृति की विशालता के सन्दर्भ में प्रो. विद्यानिवास मिश्र का कथन दृश्टव्य है– *'भारतीय संस्कृति विशालता के लिए निश्शेष समर्पण है, भूमा की सतत साधना है वह निरंतर विरेचन है नये संभरण के लिए। विशालता उसकी व्याख्या नहीं है। हाँ भारतीय संस्कृति विशालता की पहचान जरुर है।"* [6]

निष्काम कर्मवादी संस्कृति

भारतीय संस्कृति कर्म में विश्वास रखती है। कर्म फल की इच्छा किय बिना कर्म करते रहने की उद्‌घोषणा करती है भारतीय संस्कृति। कर्म के आधार पर ही मनुष्य के जीवन का निर्धारण होता है। भगवद्‌गीता, में निष्काम कर्मयोग के मार्ग का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट उदघोषणा की गई है–

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।"

इसी प्रकार की घोषणा गोस्वामी तुलसीदास ने 'राम चरित मानस' में की है जो निम्नवत है–

"करम प्रधान विश्व रचि राखा, जे जस करहि ते तस फल चाखा।"

एक अन्य स्थान पर रामचरित मानस में तुलसीदास ने स्पष्ट रुप से कहा है कि –

"सकल पदारथ है जग माही, करमहीन नर पावहि नाहीं।"

भारतीय संस्कृति भाग्य वाद का खण्डन करती है और निष्काम कर्म योग में आस्था व्यक्त करते हुए सभी को कर्मयोगी बनने का आह्वान करती है।

संस्कार प्रधान शैली

भारतीय संस्कृति संस्कार प्रधान है। यहां सम्पूर्ण मानवीय जीवन संस्कार आबद्ध है। हमारे ऋषि–मुनियों व मनीषियों ने मानवीय जीवन को पवित्र, शुद्ध एवं मर्यादित बनाये रखने के लिए संस्कारों की व्यवस्था ही थी। *"धार्मिक ही नहीं वैज्ञानिक दृष्टि से भी इन संस्कारों का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। भारतीय संस्कृति की महानता में इन संस्कारों का महती योगदान है। प्राचीन काल में हमारा प्रत्येक कार्य संस्कार से आरम्भ होता था।"* [7] भारतीय समाज में संस्कारों की यह प्रक्रिया गर्भाधान से प्रारम्भ हो कर जीवन पर्यन्त चलती हुई जीवन के अंत अर्थात मृत्यु पर अंत्येष्टि संस्कार के साथ पूर्ण होती है। भारतीय जीवन में कुल सोलह प्रमुख संस्कारों की व्यवस्था है। ये प्रमुख संस्कार है–

1. गर्भाधान
2. पुंसवन
3. सीमन्तोन्नयन
4. जातकर्म
5. नामकरण
6. निष्क्रमण
7. अन्नप्राशन
8. चूड़ाकर्म
9. विद्यारम्भ
10. कर्णभेद
11. यज्ञोपवीत
12. वेदारम्भ
13. केशान्त
14. समावर्तन
15. विवाह
16. अन्त्येष्टि।

इन सभी संस्कारों का अपना–2 महत्व है। *''हमारे मनीषियों ने हमें सुसंस्कृत तथा सामाजिक बनाने के लिए अपने अथक प्रयासों और शोधों के बल पर ये संस्कार स्थापित किये है। इन्हीं संस्कारों के कारण भारतीय संस्कृति अद्वितीय हैं।"* [8]

मूल्यवादी संस्कृति

भारतीय संस्कृति मूल्य आधारित संस्कृति है। दया, क्षमा, करूणा, परसेवा, परोपकार, सत्य, अहिंसा आदि भारतीय संस्कृति के प्रमुख मूल्य हैं। *''भारतीय संस्कृति के चार स्तम्भ है– सत्य, अहिंसा सर्व भूतात्म भाव और स्वेच्छा से कर्मफल का वरण। इनमें सत्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।"* [9] कुल, तप, ज्ञान, यज्ञ भी सत्य से श्रेष्ठ नहीं है। *''भारतीय संस्कृति कुलीनता, तपस्या, ज्ञान, यज्ञ*

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-5* January- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

सबके ऊपर प्रतिष्ठित करती है सत्य को।[10] दूसरों के दुख में दुखी होना, गरीबों, असहायों व निर्बलो की सवा भारतीय संस्कृति के मूल में है। *"पीड़ा के मंथन से ही भारतीय संस्कृति का अमृत कलश निकलता है।"* [11] गोस्वामी तुलसीदास ने परोपकार को सबसे बड़ा धर्म और दूसरों को पीड़ा पहुंचाना सबसे बड़ा अधर्म मानते हुए राम चरित मानस में लिखा है–

"परहित सरिस धरम नहि भाई,
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।"

आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का समन्वय करने वाली संस्कृति

भारतीय संस्कृति न तो कोरी आध्यात्मिकता में विश्वास करती है और न ही केवल भौतिकता को समर्पित है। यह तो आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का एक ऐसा समन्वय है जो सम्पूर्ण विश्व के समक्ष एक उदाहरण है। भारतीय संस्कृति में पुरूषार्थ चतुष्टय की कल्पना की गयी है। क्यों कि मानव शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन चारों का समन्वित रुप है और इन चारों की अपनी–2 क्षुधा है। *"इनको तृप्तकर मनुष्य का सर्वांगीण एवं संतुलित विकास हो इस हेतु भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थो का आदर्श रखा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष वे चार पुरूषार्थ है।"* [12] ये चारों पुरुषार्थ आपस में जुड़े हुए है और चारों समान रुप से महत्वपूर्ण हैं। किसी एक पुरुषार्थ के लिए अन्य को नहीं छोड़ा जा सकता है। परिस्थिति के अनुसार कभी धर्म को कभी अर्थ को, कभी काम को और कभी मोक्ष को प्रधानता देनी पड़ती हैं किन्तु विचार सभी पुरुषार्थो पर करना होता है।

भारतीय जीवन पद्धति इस प्रकार निर्मित है कि आनंद और आध्यात्मिकता एक साथ चलते है। प्रत्येक दिन नया है, उल्लास पूर्ण है, त्यौहारमय है किन्तु उसके मूल में आध्यात्मिकता का पुट निहित है। इस प्रकार की व्यवस्था भारतीय जीवन पद्धति में मिलती है जहां भौतिकता में भी आध्यात्मिकता है और आध्यात्मिकता में भी भौतिकता है। भारतीय संस्कृति के विषय में कुछ लोगो को ये भ्रांति है कि भारतीय संस्कृति एकांगी है वह केवल व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास पर ही विचार करती है। यह नितांत भ्रामक एवं गलत धारणा है। भारतीय संस्कृति व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के साथ ही उसके भौतिक विकास के विषय में भी विचार करती है। पुरुषार्थ चतुष्टय की व्यवस्था व्यक्ति के संतुलित व सर्वांगीण विकास के लिए ही है।

प्रकृति वादी संस्कृति

मानव अपनी समस्त आवश्यकताओं के लिए प्रकृति पर निर्भर करता हैं। भारतीय संस्कृति प्रकृतिवादी संस्कृति हैं। प्रकृति पर मानव जीवन की इस निर्भरता को भारतीय संस्कृति में कृतज्ञ भाव से स्वीकार करते हुए प्रकृति को प्रा सम्मान दिया गया हैं। गाय को माता कहना, उसको पहले रोटी खिलाने की परम्परा, पूजन में गौ–गोबर से लिपाई एवं गौरी का निमार्ण करना, पीपल के वृक्ष के प्रत्येक़ पत्ते में देवता के वास की कल्पना, उस पर जल अर्पित करना, नदियों को माता कहने की परम्परा, आंगन में तलसी का पौधा लगाना, देव अर्चना हेतु पुर्ष्पापण, पहाड़ों व पाषाणों की पूजा, हवन में आम की लकड़ी का प्रयोग, प्रसाद के रूप में पंचामृत एवं फलों का उपयोग ये सभी केवल भारतीय संस्कृति में होता हैं जो प्रकति के प्रति उसकी सम्मान भावना को दर्शाते हुए प्रकृति और संस्कृति के तादाम्य को प्रदर्शित करता हैं।

''भारतीय संस्कृति पर्यावरण की चिंता नहीं करती, वह स्नेह दीक्षा की चिन्ता करती हैं जो उसने ली हैं।, खुले आकाश से, सूर्योदय से, वर्षा से भीगी धरती से और घर–बाहर को आलोकित करने वाली देहली की दीपशिखा, राम–2 की टेर से रमो, सब में रमो के जाप से। पूरे परिवेश के साथ मनुष्य का विजलित तादाम्य अपने आप पर्यावरण की सुरक्षा हैं।'' [13]

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ऐसी ही प्रकृतिवादी संस्कृति के पोषक थे। उन्होंने माना कि संस्कृति प्रकृति को समृद्ध करती हैं। उनके शब्दो में –*''सामाजिक उद्‌देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रकृति को मोड़ना संस्कृति हैं परन्तु जब यह प्रकृति सामाजिक संघर्षो को जन्म देती हैं तब यह हानिकारक हैं। संस्कृति सम्मान अथवा प्रकृति की उपेक्षा के लिए नहीं हैं, बल्कि यह प्रकृति के उन तत्वों में बढ़ोत्तरी करती हैं, जो कि विश्व में जीवन को अधिक सम्पन्न एवं नियंत्रित बनाते हैं।''*[14]

पं0 जी का स्पष्ट मत था कि एक राष्ट्र का विकास तभी सम्भव हैं जब वह अपनी प्रकृति/पर्यावरण से मेल खाती हुई व्यवस्था/विचारधारा को अपनाता हैं अन्यथा वह राष्ट्र सदैव समस्याओं से घिरा रहेगा। उनके ही शब्दों में–*''आखिर प्रत्येक राष्ट्र अपनी प्रकृति के अनुसार प्रयास करते हुए सुखी और सम्पन्न जीवन व्यतीत कर सकने के लिए ही स्वतंत्रता की अभिलाषा रखता है। अपनी प्रकृति के साथ मेल न खाने वाली विचारधारा या कार्यप्रणाली का आधार लेने वाले राष्ट्र पर अनेक विपदाएं आती हैं। हमारे देश के सामने आज जो संकट हैं उनका भी यहीं कारण हैं।''*[15]

एकात्मवादी संस्कृति

सम्पूर्ण सृष्टि विविधताओं से भरी हुई हैं। यहां विश्व में मनुष्य अकेला नहीं रहता हैं। अनेको जलचर, थलचर, नभचर प्राणी हैं इस विश्व में। वृक्ष, लतायें, नदियां, तालाब, पहाड़, समुद्र आदि अनेको विविधतायें हैं। लेकिन इन सभी में अर्थात मानव सृष्टि, मानवेत्तर प्राणि सृष्टि, वनस्पति जगत आदि में अनेको विविधतायें होते हुए भी परस्पर पूरकता, पोषकता एवं सहयोग आधारित सम्बंध हैं। ये सब आपस में एक दूसरे पर किसी न किसी रूप में निर्भर रहते हैं। मानव केवल शरीर मात्र नहीं वरन् शरीर, मन, बुद्धि, एवं आत्मा का संकलित रूप हैं। *''इसीलिए मानव का सर्वांगीण विकास उसके शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा सबका संकलित विचार हैं।''*[16]

यहीं चार तत्व एक व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। परन्तु ये सभी एकात्म हैं। इन चारो को अलग–अलग रख कर विचार करने के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता हैं। इन सभी का समन्वित विकास ही मनुष्य का विकास हैं। अर्थात–*''मनुष्य की प्रगति का अर्थ उसके शरीर, दिमाग, बुद्धि, एवं आत्मा की प्रगति हैं।''*[17]

भारतीय संस्कृति में मानव एकता का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण प्राणिमात्र तथा चराचर सृष्टि की एकता का भी विचार किया गया है। इन सभी में चाहे कितनी ही

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-5* January- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

विविधतायें हों, उस विविधता के मूल में एकता हैं और सृष्टि की विविधता उसकी आंतरिक एकता की ही अभिव्यक्ति हैं। भारतीय संस्कृति का यही मुख्य विचार हैं। *''यही इस विविधता में एकता का प्रमुख सूत्र हैं। एकता के इस सूत्र को ध्यान में रखकर इस आंतरिक एकत की अनेक रूपी अभिव्यक्ति में रहने वाली परस्पर पूरकता को पहचानते हुए मनुष्यों पर इस परस्परानुकूलता के संस्कार करना तथा उस एकता को दृढतर बनाना ही सच्ची संस्कृति हैं। भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है''।*[28] प0 दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय संस्कृति की विशेषता को स्पष्ट करते हुए कहा था कि–*''भारतीय संस्कृति का पहला लक्षण यह हैं कि वे पूरे जीवन को एकात्म रूप में देखते हैं। यह एक अंतरंग विचारणीय मुद्दा हैं।''*[39] इस विशेषता के आलोक में उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि–*''भारतीय संस्कृति एकात्म हैं।*[20]

नारीवादी संस्कृति

भारतीय संस्कृति एक नारीवादी संस्कृति है जिसमें सदैव महिलाओं को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' इसी मूलभाव का उद्घोष है। सभ्यता के उद्गम से लेकर उसके विकास तक नारी की भूमिका महत्वपूर्ण थी और उसे प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त था। ज्ञान, शक्ति और ऐश्वर्य तीनों का प्रतीकात्मक रुप हमारी तीन देवियों – सरस्वती, लक्ष्मी औद दुर्गा या काली में निहित है। इस प्रकार *"समुत्कर्ष और निःश्रेयस के लिए आधारभूत 'श्री', 'ज्ञान' तथा शौर्य की अधिष्ठात्री नारी रूपों में प्रकट देवियों को ही माना गया है। आदि काल से ही हमारे देश में नारी की पूजा होती आ रही हैं। यहां 'अर्द्ध नारीश्वर' का आदर्श रहा है।"* [21]पत्नी को अर्द्धांगिनी के रुप में माना गया है एवं पुरुष बिना पत्नी के कोई भी शुभ कार्य, पूजा दान यज्ञादि नहीं कर सकता। किसी भी श्रेष्ठ कर्म हेतु पत्नी का साथ होना अनिवार्य है। माँ के रूप में स्त्री को देवता या उससे भी उच्च स्थान देते हुए 'मातृदेवों भव' कहा गया है। माता के ही नाम पर पांडु पुत्रों का कौन्तेय कहा गया। राम के पहले सीता, कृष्ण के पहले राधा और नारायण के पहले लक्ष्मी जी का नाम आना भारतीय संस्कृति के नारी वादी मूल्यों को दर्शाता है। भारतीय संस्कृति में महान नारियों की उज्जवल परम्परा प्राचीन काल स ही विद्यमान रही है। गार्गी, घोषा, अपाला, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी प्रकाण्ड विदुषी, अनुसूया, सीता, सावित्री, द्रोपदी जैसी तेजस्विनी, कैकेई, कुन्ती, विदुला जैसी वीरांगना स्त्रियों की यहां परम्परा रही है। रानी झांसी, रानी अहिल्याबाई, दुर्गावती, रानी चेनम्मा, माता जीजाबाई, मीरा, पद्मिनी, पन्नाधाय आदि महान स्त्रियों ने अपने त्याग व शौर्य से उस परम्परा को आगे बढ़ाया, जीवित रखा। भारतीय संस्कृति के मूल में ही नारी शक्ति का सम्मान निहित है, नारियों की महत्ता में उसकी आत्मा विराजमान है।

धर्म आधारित संस्कृति

भारतीय संस्कृति धर्म आधारित संस्कृति है भारतीय जीवन पद्धति इस प्रकार से नियोजित की गई है कि उसका प्रत्येक कार्य उसे धार्मिकता के पथ पर अग्रसर करते हुए नैतिक मूल्यों, नैतिक आचार–विचार व व्यवहार को स्थापित करता है। लेकिन भारतीय संस्कृति में धर्म की अवधारणा अति व्यापक है। यहां धर्म को उन समस्त गुणों के रुप में माना जाता है जो धारण करने योग्य है अर्थात 'धारयते इति धर्मः'। धर्म सार्वभौमिक और सार्वकालिक होता है। मनु स्मृति में धम के दस लक्षण बताये गये हैं–

"धृतिः क्षमा दमोअस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।"

अर्थात– धैर्य, क्षमा, दम (सदैव संयम पूर्वक धर्म में लगे रहना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (बाह्य व आंतरिक पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह, धी (सत्कर्मा द्वारा बुद्धि वर्द्धन), विद्या, सत्य और अक्रोध ये धर्म के दस लक्षण हैं। कर्तव्य पालन को धर्म माना गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने तो परोपकार को धर्म मानते हुए राम चरित मानस में स्पष्ट रुप से 'परहित सरिस धरम नहि भाई' की घोषणा की। भारतीय जीवन पद्धति का प्रत्येक कार्य धर्म से आबद्ध है। यहां पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा मानवीय जीवन को धर्ममय बनाती है।

वैविध्यपूर्ण एवं अनेकता में एकता की संस्कृति

भारत एक विशाल देश हैं। यहां अनेक प्रांत है और प्रत्येक प्रांत में कई मत या सम्प्रदाय के लोग निवास करते हैं जिनकी अलग–2 बोलियां, भाषायें, खान–पान, पहनावा, रीतिरिवाज आदि है। प्राकृतिक रुप से भी भारत में बहुत विविधता है। किन्तु इन अनेकता व वैविध्यपूर्ण परिवेश के मध्य में सदैव एकता विद्यमान रही है। विभिन्न जातियों, समुदायों, मतों व भाषाआं के बावजूद भारतीय जनमानस एक एसी संस्कृति और एकता के सूत्र में बधा है जो अपने आप में अनूठी और बेजोड़ है। भारत में यह परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। हमारे मनीषियों द्वारा *"जीवन की रचना ही कुछ ऐसी बनायी गई थी कि सदैव सम्पूर्ण भारत का स्मरण हो। स्नान करते समय–जले*

*'' गंगे च यमुने चैव, गोदावरि सरस्वती ।
नर्मदे सिंधु कावेरी, जले अस्मिन सन्निधि कुरू ।। ''*

यह श्लोक सहज ही मे कहा जाता था । राज्य भिन्नता के कारण इसमें कोई अंतर नही आया।''[22]

भारतीय संस्कृति की यह विविधता कहीं भी राष्ट्र के लिए बाधक नहीं बनी। इसकी विविधता, अनेकता, बहुरंगता और विविधता में सदैव एकता विद्यमान रही है। *"भारतीय संस्कृति की प्रमुख विचार धारा में विभिन्न रुपों में विविधता में एकता की अभिव्यक्ति पाई जाती है।''*[23] यही विविधता ही भारतीय संस्कृति की पहचान है।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति की उपरोक्त वर्णित विशेषताओं के आधार पर ही विश्व में उसे अतुल्य माना गया है व सदा जीवा संस्कृति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। भारतीय संस्कृति की इस अनवरत यात्रा में उसका वैविध्यपूर्ण रुप और बहुमूलता सदैव सहायक रही है। *"भारतीय संस्कृति का एक रूप ऊर्ध्वमूल भी है, यह बरगद है, न्योग्रोध है। यह अनेक मूल संस्कृति है, एक मूल नहीं। यह मूल सहित उखड़ कर भी नष्ट नहीं होती। कबीर के शब्दों में यह मर जीवा है, तांत्रिकों के शब्दों में 'छिन्न मस्ता' है, वैष्णव भक्तो के शब्दों में 'दरद दिवानी' है, गीता के शब्दां में यह ब्रह्म छवि है। इसमें जीने की अदम्य आकांक्षा है।"* [24] भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम्

संस्कृति है जिसका उद्देश्य 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया है, व्यापकता व उदारता इतनी है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' बन जाता है, 'अहं ब्रहमास्मि' कह कर सभी में आत्म विश्वास का निर्माण व संचार करती है, सभी में मातृ भूमि के प्रति प्रेम का भाव प्रवाहित कर 'जननी जन्म भूमिश्च, र्स्वगादपि गरीयसी' कहती है, पृथ्वी के प्रति समर्पण दर्शाते हुए 'माता भूमिः, पुत्रो अहम् पृथिव्याः' स्वीकार करती है, 'वयम् राष्ट्रे जागृयाम् पुरोहिताः' कहकर राष्ट्र के सभी नागरिकों को राष्ट्रीय कर्तव्यों के प्रति जागरुक करती ह, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' का गान करते हुए नारी शक्ति के प्रतिसम्मान प्रदर्शित करती है, सत्य के प्रति समर्पित होते हुए 'सत्य मेव जयते' का उद्घोष करती है, माता–पिता व गुरु की महत्ता स्थापित करते हुए 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव' व 'गुरुर्ब्रह्म, गुरूर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वराय' का मंत्र देती है, प्रत्येक ऐसे आचरण जो मानवीय मूल्यों पर आधारित है व ग्रहणीय है को धर्म मानते हुए 'धारयते इति धर्मः' कह कर धर्म की व्यापकता को स्पष्ट करतो है, अतिथियों को सम्मान देते हुए 'अतिथि देवो भव' को जीवन मूल्यों में शामिल करती है, निष्काम कर्मयोग का मार्ग प्रशस्त करते हुए सभी से 'कर्मण्येवाधिकारस्ते, माफलेषु कदाचन' का आग्रह करती है, विद्या की महानता को स्वीकारते हुए 'विद्ययामृत मश्नुते का ज्ञान देती है व 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' स्वाकारती है, और प्रार्थना करती है कि 'असतो मा सदगमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय', साथ ही सभी को "उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत" का निर्देश देती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि *''भारतीय संस्कृति सत्य की अनथक खोज है, इसलिए स्वीकारी है, उदार है, मुक्त है। भारतीय संस्कृति निरंतरता की साधना है, इसलिए कही भी ठहराव नहीं है, अपनी बार–2 जांच है, अपना अतिक्रमण भी हैं। भारतीय संस्कृति पूर्णता की ओर यात्रा है इसलिए अधूरी होती हुई भी, साकांक्ष होती हुई भी सापेक्षता की बात करती है, ताकि सब मिल कर पूर्ण बने, अकेले पूर्ण नहीं हुआ जाता। पूर्णता सबको साथ लेकर और साथ ऐसे लेकर कि प्रत्येक भूमिका अलग–2 हो, पर विरोधी न हो, सम्पन्न होती है। और अंत में भारतीय संस्कृति विश्वमात्र के साथ कौटुम्बिक आत्मीयता जोड़ने का संकल्प है, पर इसकी शुरुआत छोटे से विशेष परिवेश से होती है, इसमें गिनती छोटी उंगली से शुरु होती हैं।''* [25]

अंत टिप्पणी

1. *लाल रमन बिहारी, भारतीय शिक्षा का विकास एवं उसकी समस्याएं, रस्तोगी पब्लिकेशंस, मेरठ। पृष्ठ सं0 – 1*
2. *पचौरी, डा0 गिरीश, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ, पृष्ठ संख्या–511.*
3. *मिश्र, विद्यानिवास, भारतीय संस्कृति के आधार, सम्पादक–मिश्र, गिरीश्वर दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या–45*
4. *महोपनिषद, अध्याय चतुर्थ, श्लोक–71 अर्थर्ववेद 12/01/2012*
5. *मिश्र, विद्यानिवास, भारतीय संस्कृति के आधार, सम्पादक–मिश्र, गिरीश्वर दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या–10*
6. *सोलह संस्कार, iiag.co.in /*
7. *सोलह संस्कार, iiag.co.in*
8. *मिश्र, विद्यानिवास, भारतीय संस्कृति के आधार, सम्पादक–मिश्र, गिरीश्वर दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या–35*
9. *मिश्र, विद्यानिवास, भारतीय संस्कृति के आधार, सम्पादक–मिश्र, गिरीश्वर दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या–39 /मिश्र, विद्यानिवास, भारतीय संस्कृति के आधार, सम्पादक–मिश्र, गिरीश्वर दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या–19*
10. *नेने, विनायक वासुदेव, पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड–2 एकात्म मानव दर्शन, नई दिल्ली, सुरूचि प्रकाशन, पृष्ठ सं0–39*
11. *मिश्र, विद्यानिवास, भारतीय संस्कृति के आधार, सम्पादक–मिश्र, गिरीश्वर दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ0 सं0–145*
12. *23 अप्रैल 1965 ई0 को मुम्बई में आयोजित अधिवेशन में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दिये गये व्याख्यान से।*
13. *नेने, विनायक वासुदेव, पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड–2 एकात्म मानव दर्शन, नई दिल्ली, सुरूचि प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1990 पृष्ठ सं0 11–12*
14. *नेने, विनायक वासुदेव, पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड–2 एकात्म मानव दर्शन, नई दिल्ली, सुरूचि प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1990, पृष्ठ संख्या–12*
15. *23 अप्रैल 1965 ई0 को मुम्बई में आयोजित अधिवेशन में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दिये गये व्याख्यान से*
16. *नेने, विनायक वासुदेव, पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड–2 एकात्म मानव दर्शन, नई दिल्ली, सुरूचि प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1990 पृष्ठ सं0 101*
17. *23 अप्रैल 1965 ई0 को मुम्बई में आयोजित अधिवेशन में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दिये गये व्याख्यान से*
18. *23 अप्रैल 1965 ई0 को मुम्बई में आयोजित अधिवेशन में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दिये गये व्याख्यान से*
19. *भारतीय नारी–नारी का सम्मान https://m.facebook.com>premalink*
20. *भिषीकर, चन्द्रशेखर परमानन्द, पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड–5 राष्ट्र की अवधारणा, नई दिल्ली, सुरूचि प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 1991 पृ0 सं0–53*
21. *23 अप्रैल 1965 ई0 को मुम्बई में आयोजित अधिवेशन में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दिये गये व्याख्यान से*
22. *मिश्र, विद्यानिवास, भारतीय संस्कृति के आधार, सम्पादक–मिश्र, गिरीश्वर दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या–12*
23. *मिश्र, विद्यानिवास, भारतीय संस्कृति के आधार, सम्पादक–मिश्र, गिरीश्वर दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या–45*